वेदांग शिक्षा व आधुनिक उच्चारणदोष

प्रो. दानपति तिवारी एवं श्वेता सिंह*
शोध– निर्देशक
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष : संस्कृत विभाग
का.सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या
*शोधछात्रा–संस्कृत

भारतीय ज्ञान–विज्ञान के आधारस्तम्भ वेदों के सम्यक् अर्थावबोध हेतु वेदाण्गें में शिक्षा का स्थान नितान्त ही महत्त्वपूर्ण है। जब हम वेदमन्त्रों का उच्चारण करते हैं तो हमें उनकी शुद्धता पर ध्यान देना परमावश्यक है। इसी उच्चारण की प्रक्रिया का ज्ञान कराने के लिए वेदाण्गें में शिक्षा को अच्छी तरह से जानना आवश्यक है। पाणिनीय शिक्षा में इसे वेदपुरूष की घ्राणेन्द्रिय मानकर इसके महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है–

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरूक्तं श्रोत्रमुच्यते।।
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात् साण्मधीत्यैव ब्रहमलो महीयते।।[1]

यहाँ शिक्षा को वेदपुरूष की नासिका कहकर यह समझाने का प्रयास किया गया है कि यदि वह न हो तो वर्णनिष्पत्तिरूप गन्ध का ग्रहण भी नहीं हो सकता। ऐसा देखा जाता है कि व्याकरणाशास्त्र की जो व्युत्पत्तिप्रक्रिया है उससे ही आने वाले अर्थ पर मुख्यार्थ प्रतिष्ठित होता है, क्योंकि शिक्षा शब्द योगरूढ़ हैं इसकी व्युत्पत्तियाँ अधोलिखित है–

(क) शिक्षा शब्द 'शिक्ष् अभ्यासे' धातु से 'गुरोश्च हलः (अष्टा0 3/13/102) से 'अ' प्रत्यय करने पर निष्पन्न होता है। यहाँ शिक्षा की स्त्रीलिंग भाववाचक संज्ञा की निष्पत्ति होती है तथा 'अकर्तरि च कारके संज्ञायाम्' (अष्टा0–3.3.19) से करणवाचक संज्ञा मानने पर उस शास्त्र का अर्थ निष्पन्न होता है, जिससे शिक्षणीय पदार्थ का बार–बार अभ्यास (अनुसंधान) किया जाये। यह भावपरक अर्थ है। अभ्यास के सन्दर्भ में काव्यहेतु के अन्तर्गत काव्यप्रकाश में कहा गया है कि–काव्यं कर्तुं विचारयुतुं च ये जानन्ति तदुपदेशेन करणे योजने च पौनः पुन्येन प्रवृत्तिरिति।[2]

(ख) शिक्षा शब्द सन्प्रत्यान्त 'शक्लृ शक्तौ' धातु से अ प्रत्ययात् (अष्टा0–3/3/102) करने पर निष्पन्न है। इसका अर्थ है 'शक्ति की इच्छा' या 'सकने की इच्छा– शक्तुमिच्छा शिक्षा।

(ग) शिक्षा शब्द 'शक् मर्षणे' धातु से 'सन्' प्रत्यय द्वारा निष्पन्न हैं इसका अर्थ है–'सहने की इच्छा' ' शकितुमिच्छा शिक्षा।

शिक्षा की इन तीनों व्युत्पत्तियों में से प्रथम की प्रधानता है तथा यौगिक के साथ रूढ़ अर्थ लेने पर ही वेदांग शिक्षा का मुख्यार्थ द्योतित होता है। इसके सन्दर्भ में तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है कि–ऊँ शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः। **इत्युक्तः शीक्षाध्यायः।**[3] अर्थात् शिक्षा (शीक्षा) की व्याख्या कहेंगे। वर्ण, स्वर मात्रा, बल, साम और सन्तान यही शीक्षाध्याय है। शिक्षा को परिभाषित करते हुए आचार्य सायण का कथन है–

स्वरवर्णाद्युचारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा।[4]

अर्थात् वह विद्या जो स्वर, वर्णादि उच्चारण के प्रकार का उपदेश दे, शिक्षा है। यह वेद की अध्ययनपद्धति है कि सर्वप्रथम गुरु के द्वारा वेदमन्त्रों का उच्चारण किया जाता है तथा छात्र उसका अनुसरण करता है। इसीलिए वेद को अनुश्रवः अनु पश्चात् श्रयते यः सः अनुश्रव की संज्ञा दी गयी है।

वेदमन्त्रों के सम्यक् उच्चारण हेतु शिक्षा–वेदांग के षड् अंगों का ज्ञान परमावश्यक होता है। यहां प्रयुक्त स्वर से उदात्तादि, वर्ण से स्वर और व्यंजन, मात्रा से हस्व, दीर्घ वप्लुत, बल से उच्चारण स्थान और प्रयत्न तथा साम से साम्य अर्थात् दोषरहित और माधुर्यादि गुणयुक्त उच्चारण और सन्तान से संहिता अर्थात् पदों की अतिशय सन्निधि का ज्ञान होता है।

शिक्षा–वेदांग छः वेदाण्गें में नितान्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि आचार्य पतंजलि ने स्वाध्याय में षडण्सहित वेद के अध्ययन का उल्लेख किया है–

ब्राह्मणेन निष्कारणों षडण्गे वेदाऽध्येयो ज्ञेयश्च।

इसके साथ ही उपनिषदों को लेकर कुल एकादश विधायें हो जाती है। विद्या के परा और अपरा दो रूपों में से उपनिषद्, वेदान्त, को परा विद्या माना जाता है तथा अपरा विद्या के अन्तर्गत चार वेद और छः वेदांग आते है। कहीं–कहीं (अर्वाचीन परिगणन के अनुसार) अष्टादश विधायें भी स्वीकार की गयी है। यदि विचार किया जाये तो विश्व का सम्पूर्ण पदार्थजाल शब्दाधीन होकर ही बोध में यथावत् आ जाता है। इसीलिए आचार्य भर्तृहरि का मानना है कि

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते।।

कहने का तात्पर्य यह है कि सभी शब्द वर्णात्मक हैं तथा यही वर्ण आगे चलकर उच्चारण का स्वरूप धारण कर लेते है। वेदाण्गें में जो उच्चारण की विधा है वही शिक्षा है। इस शिक्षा के अभाव में विद्या या ज्ञान का व्यवहारिक स्वरूप–लाभ प्राप्त करना सम्भव नहीं है। यही शिक्षा की मौलिकता है। करणसाधन के रूप में शिक्षा का तात्पर्य है–''शिक्ष्यते यया सा शिक्षा' अर्थात् जिसके द्वारा अभ्यास किया जाये, शक्तिप्राप्त करने की इच्छा की जाये तथा गुणों के सहिष्णुता की कामना हो वह विद्या शिक्षा कहलाती है। शुद्धोच्चारण की प्रक्रिया द्वारा पाठ्यगुणों की तितिक्षा होती है तथा उसके बाद ही अभ्यास की सार्थकता होती है। इस शिक्षा वेदांग का परम–प्रयोजन उच्चारणगत दोषों को निरस्त करते हुए गुणों का सन्निवेश करना ही है। जो अभ्यासादि से युक्त व्यक्ति है वही शिक्षक कहलाता है। उसे शिक्षा का अध्येता व ज्ञाता भी माना जाता है–

शिक्षामधीते वेद वा शिक्षकः।

हमारी प्राचीन भारतीय वैदिक परम्परा में वेदमन्त्रों के शुद्ध उच्चारण की प्रक्रिया का सम्यक् ज्ञानस्वरूप शिक्षा–वेदांग के अन्तर्गत पाठकों की दो श्रेणी निर्धारित की गयी है। 1– उत्तमपाठक, 2– अधम पाठक। इसको स्पष्ट करते हुए पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है–

गीतीशीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः।
माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थंरच षडेते पाठका गुणाः।।[5]

इस शिक्षा में हमें शुद्धोच्चारण के लिए सदैव प्रेरित किया गया है। यहाँ तो यह भी बताया गया है कि जो सम्यक्रूप से वर्णों का प्रयोग करता है वही वास्तव में शब्द की उपासना करता है तथा शब्दब्रह्म में निष्णात व्यक्ति को पर ब्रह्म की प्राप्ति हो जाती है–

एवं वर्णाः प्रयोक्तव्या नाव्यक्ता न च पीड़िताः।
सम्यग्वर्णप्रयोगेण ब्रहमलोके महीयते।।[6]

इसी तथ्य का उद्घाटन याज्ञवल्क्य शिक्षा भी करती है–

मधुरं चापि नाव्यक्यं सुव्यक्तं न च पीड़ितम्।

यद्यपि हमारी सनातन परम्परा में वर्णोच्चारण की प्रक्रिया सुसंस्कृत थी, किन्तु मुस्लिम शासकों के पश्चात् आंग्लभाषा के प्रभाव से फारसी व अँगरेजी के वर्णों का उच्चारण हमारी वर्णमाला को प्रभावित कर दिया। जैसे–

(1) नासिक्यवर्ण अनुस्वार का उच्चारण स्वर के पश्चात् और व्यंजन से पूर्व होता है। इसके उच्चारणार्थ कण्ठ से चला हुआ वायु नासिका से बाहर आता है, किन्तु अंगरेजी और फारसी वर्णमाला के प्रभाव से उत्तरभारत में नकार और दक्षिण भारत में मकार ने अनुसार का स्थान ले लिया। यथा–'अंश' को कहीं 'अन्श' और कही अम्श कहा जाने लगा।

2– भारत के अतिरिक्त अन्य देशों में 'फ' आदि महाप्राणध्वनियों का अभाव है वहां 'क' ध्वनि अवश्य है, किन्तु उसका उच्चारण 'व' के सदृश होता है, जबकि 'व' दन्त्योठठ्य है जबकि 'फ' ओठठ्य है।

3– यह ध्यातव्य है कि पदान्त में कहीं हकार का प्रयोग नहीं होना, परन्तु वहां विसर्ग (:) होता है। इसके अतिरिक्त हकार सघोष व्यग्नन है, किन्तु विसर्ग अद्योष है। अकार का अनुप्रदान (बाह्य यत्न) नाद है तथा विसर्ग का श्वास है।

4– सम्प्रति शकार को सकार तथा इसके विपरीत सकार को शकार भी बोला जा रहा है। विदेशी प्रभाव के कारण सम्प्रति पश्चात् और पश्चिम आदि में 'श्च' का उच्चारण दन्तमूल से हो रहा है, जो उचित नहीं है।

5– षकार का उच्चारण करने पर मूर्धा का स्पर्श होता है, कुछ लोग इसका उच्चारण दन्तमूल से करते है जो कि अशुद्धच्चारण है।

6– संयुक्ताक्षर 'क्ष' का निर्माण 'क्ष' से होता है। इसमें ककारांश का उच्चारण स्पष्ट होता है, किन्तु षकारांश तालव्य जैसा हो जाता है। प्राकृत भाषा में 'क्ष' को 'छ' हो जाता है जैसे–मक्षिका मच्छिआ, वक्षः – वच्छं आदि। इसी प्रकार 'क्ष' को कहीं ख भी हो जाता है जैसे क्षण : खण, पक्ष–पक्ख, रूक्ष–रूक्ख, तीक्ष्ण–तिक्ख।

7– ज्ञ की निष्पत्ति जकार और शकार के संयोग से होती है। इसे 'ज्य' कहा जाना चाहिए, किन्तु इसका उच्चारण ग्यँ किया जाता है। महाराष्ट्र में ज्ञ (ग्यँ) को द्न कहा जाता है। यह एक प्राचीन उच्चारण है। फारसी भाषा में ज्ञानार्थक धातु दानिश्तन् है।

8– ऋकार और लृकार दोनों वर्णों में से प्रथम वर्ण मूर्धन्य तथा द्वितीयवर्ण दन्त्य है। इन दोनों को समानाक्षर माना जाता है, किन्तु स्वरांश के मध्य में रेफ और लकार संश्लिष्ट रहते है–

ऋ–लृवर्णौ रेफलकारौ संश्लिष्टावश्रुतिधरावेकवर्णौ।[7]

9– ड, श और ण के उच्चारण में भी विसंगति है। ये क्रमश कण्ठनासिक्य, तालुनासिक्य और मूर्धा–नासिक्य हैं।

10– पदान्त अनुस्वार के पश्चात् यदि वर्गीय वर्ण आता है तो उसका उच्चारण परसवर्ण किया जा सकता है। जैसे–ग्रामं गच्छति– ग्राम°च्छति, धर्मंचरित–धर्मंचरति, ग्रन्थं टीकते ग्रन्थण्टीकते, पापं तरति–पापन्तरति और रामं भजति–रामम्भजति।

इस प्रकार जो उच्चारण की अशुद्धता है उसके कारणों पर विचार करने की आवश्यकता है। प्रायः ऐसा देखा जाता है कि उच्चारयिता के द्वारा स्थान एवं प्रयत्न का सही तालमेल नहीं रहता। श, ष, स के उच्चारण में ईषद्विवृत या विवृत प्रयत्न होता है और इनके उच्चारण करते समय हमें वर्णों के उच्चारणस्थान व प्रयत्न का विशेष रूप से ध्यान देना चाहिए। वर्णों के उच्चारण में होने वाली असावधानी से अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। इसके सन्दर्भ में पाणिनीय शिक्षा में कहा गया है–

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्तिः यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात्।।[8]

इसी शिक्षा में उच्चारण की अशुद्धि के दुष्परिणाम पर भी प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि–

कुतीर्थादागतं दग्धमपवर्णं च भक्षितम्।
न तस्य पाठे मोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्विषात्।।[9]

अतएव प्रयोक्ता के द्वारा किसी मन्त्र का प्रयोग करते समय प्रत्येक वर्ण का ध्यान अवश्य दिया जाना चाहिए।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पा0शि0– 41–42
2. काव्यप्रकाश–आचार्य विश्वेश्वर, पृ0 17 (प्रथम उल्लास)
3. तैत्तिरीयोपनिषद्–1/2
4. सायण–ऋग्वेदभाष्यभूमिका पृ0 49
5. पाणिनीय शिक्षा– 32.33
6. पा0शि0–31
7. शुक्ल यजुर्वेद प्रातिशाख्य–4.146
8. पा0शि0–52
9. पा0शि0–50